वृष्टि-छाया प्रदेश का कवि

प्रियंकर पालीवाल

वृष्टि-छाया प्रदेश की कवि

प्रियंकर पालीवाल

प्रमिला को

पच्चीस साल के संग-साथ के लिए

आलोक: पत्रलेख्यादौ गोष्ठीप्रहसनज्ञता ।

प्रेक्ष प्राणिस्वभावानां समुद्राद्रिस्थितीक्षणम् ।।10।।

रवीन्दुताराकलनं सर्वर्तुपरिभावनम्।

जनसंघाभिगमनं देशभाषोपजीवनम्।।11।।

-क्षेमेन्द्र:कवि कंठाभरण (12वीं सदी)

(A poet should learn with his eyes)

The forms of leaves

he should know how to make

people laugh when they are together

he should get to see

what they are really like

he should know about oceans and mountains

in themselves

and the sun and the moon and the stars

his mind should enter into the stars

he should go

among many people

in many places

and learn their languages.)

Translation : W S Merwin /J. Mousaieff-mason

भूमिका

प्रियंकर पालीवाल एक गंभीर साहित्य कर्मी हैं। एक अच्छे नेक इन्सान भी। शायद यही वजह है उनकी मेरी मैत्री बनी रही। एक अच्छे मित्र की कविता पर लिखना कठिन काम है। वहां वस्तुनिष्ठ होने के लिये सजग रहने की जरूरत है। यह उनका पहला काव्य संग्रह है। मुझे आश्चर्य है ऐसे प्रतिभासम्पत्र तथा संवेदनशील कवि का संग्रह अब तक क्यों नहीं आया। मैं प्रियंकर के सब्र की सराहना करता हूँ। इस सब्र का ही प्रतिफल है उनकी कविताओं की प्रीतिकर परिपक्वता। कोई भी इन कविताओं को पढ़कर इसे कवि का पहला संग्रह न मानेगा। आखिर ऐसा क्या है इन कविताओं में जो मुझे बार-बार आकर्षित करता है। कुछ बातों से ये कवितायें आज की अन्य कविताओं से बिकुल भिन्न तथा अलग हैं।

प्रियंकर बड़े तथा विविध सरोकारों के लोकधर्मी कवि हैं। सही मायनों में आज लोकधर्मी होना एक बड़ी चुनौती है। उन्होंने अपनी एक कविता 'आदमकद' में कुछ खुलासा किया है- *मेरी कविता का/विषय है महानगर का/एक आदमकद व्यक्तित्व जिसके भीतर जिन्दा हैं/खेत- खलिहान- चौपाल/एक पुश्तैनी घर और चौबारा/यानी अजनबी चेहरों की भीड़ नहीं। समस्याओं से जूझता गांव सारा....* यानी उनकी कविता का कथ्य बहुत व्यापक है। यहाँ किसान है। श्रमिक है। मध्यवर्ग भी है। इन सबके अंतर्विरोधों की एक सघन दुनिया भी। यहाँ सबसे महत्वपूर्ण बात है 'एक पुश्तैनी घर और चौबारा' यानी अपनी जड़ें सुरक्षित हैं चाहे हम कहीं हों। जैसे नेरुदा चाहे जहाँ हों उनकी जड़ें चीले में ही सुरक्षित हैं। नागार्जुन की मिथिला में। केदार बाबू की बुन्देलखण्ड में। त्रिलोचन की अवध में।

यह पूरी कविता जैसे प्रियंकर के कवि का आंतरिक सुविचारित कथ्य है। आज बड़े-बड़े ज्योतिस्तंभों को मैने अवसरवाद की रौ में बुझते देखा है ! प्रियंकर ने न तो अपनी आस्था बदली न

चेहरा। कवि का मानना है कि जो व्यक्ति लोक से जुड़ा है, जिसका जीवन एक खुली किताब है, जो हर स्थिति में सहज है कीट्स के शब्दों में जिसमें 'निगेटिव कैपेबिलिटी' (निषेधी क्षमता) है, जो कामरूप को पछाड़ने वाली मायानगरी में पारदर्शी बना रह सकता है वह बदलेगा कैसे ! आज के समय की सबसे बड़ी त्रासदी है प्रलोभनों के बीच अवसरों के अनुसार अपने को बदल-बदल कर चेहरा विहीन बना लेना। ऐसे लेखकों का लेखन भी पक्षाघात का शिकार होता है। प्रियंकर इस त्रासदी का सामना करके भी अपने को बचाये रहे हैं। यही वजह है वह महानगर में रहकर गाँव को नहीं भूले। न किसान की उन्होंने उपेक्षा की न श्रमिक की। उनका यकीन है कि जिस दिन किसी व्यक्ति में गाँव खत्म हो जायेगा उस दिन वह उनकी कविता का विषय नहीं रहेगा।

प्रियंकर अपने समय के सबसे बड़े राष्ट्रीय खतरे साम्राज्यवाद की तरफ हमारा ध्यान दिला कर उस पर सीधा प्रहार करते हैं। आज के कवि 'जब स्वप्न में अपनी मृत्यु से लड़ने' का प्रहसन कर रहे हों वहाँ प्रियंकर की प्रतिरोधी कविता विश्वबैंक की बंदरबाँट पर तीखा प्रहार करके हमें बड़े सरोकारों से जोड़ती है- मुद्राक्रोष के सँपेरों की बीन पर/ फन हिलायेंगी/ खस्ताहाल सरकारें/ राष्ट्रीय गीतों की धुन तैयार करेंगे/ विश्व बैंक के संगीतकार/ आर्थिक कीर्तन के कोलाहल में / यह बंदरबाँट के नियम का / अंतरराष्ट्रीयकरण होगा।

दुनिया जानती है कि अमरीकी साम्राज्यवाद दुनिया पर शासन करता है मुद्राकोष, विश्वबैंक तथा विश्व व्यापार संगठन के खम्भों द्वारा। मुझे प्रसन्नता है प्रियंकर ने बेखौफ इस खतरनाक अंतरराष्ट्रीय संकट से चेताने के लिए साम्राज्यवाद पर सीधा प्रहार किया है। आज की कविता में ऐसी बड़ी चुनौतियों से मुठभेड़ करने का साहस जैसे कवियों में चुक सा गया हो! ज्यादातर आत्मरति, आत्मदया या फिर रूप (फार्म) की मनुहार ही कविता में दिखाई देती है। यदि आज की कविता में बड़ी चुनौतियों का सामना करने का साहस नहीं है तो वह सही अर्थों में लोकतांत्रिक कविता है ही नहीं! प्रियंकर सावचेत करते हैं कि इस उपभोक्तावादी युग में कविता विज्ञापन होती जा रही है। कवि

ने यहां सामाजिक विसंगतियों पर भी तीखे व्यंग्य किये हैं। कवि बड़े मानवीय लक्ष्यों तथा आस्था के प्रति बेहद सजग है। आस्था हमारा पथ-प्रदर्शन करे। सत्य के लिए हम संघर्ष करें। जहाँ जनविरोध है, असत्य और अनाचार है, वहाँ कविता का अस्त्र की तरह उन पर प्रहार होना जरूरी है। मनुष्य का इतिहास संघर्षधर्मी रहा है। यही संघर्षधर्मिता लोक की आत्मा है। प्रियंकर की कविता इसकी रक्षा करने में सक्षम है।

कविता के लिए जीवन्त शब्द ' सदानीरा' है। कबीर भाषा को 'बहता नीर' ही कहते हैं। शब्द से ही प्यार, सौंदर्य, मनुष्य की पीड़ाएं, कवि के स्वप्न, हमारी निजी तथा जातीय जय-पराजय, उल्लास और अवसाद व्यक्त होते रहे हैं। प्रियंकर ने प्यार, सौंदर्य, सौहार्द, करुणा, तथा अन्य मानवीय संबंधों आदि के कोमल भावों पर भी बेहतरीन कविताएं लिखी हैं। पर यहाँ सामाजिक सरोकर लुप्त नहीं हैं। यह बड़ी बात है। 'महास्वप्न' कविता में प्रेम वेगवान प्रवाह बन कर छंदों के बंधन तोड़ 'धरती से स्वर्ग तक का सेतु बनता है।' वह कवि को युगद्रष्टा बनाता है। इससे कविता में एक सामूहिक चेतना विकसित हुई। कवि जानता है सर्वहारा को उसकी नियति बदलने के विज्ञान के बारे में आज के कवि नहीं बताते। सत्ता उनकी स्थिति को बेहतर बनाने की कागजी बातें तो करती हैं पर उसे व्यवहार में लाने में हिचकती है। बुर्जुआ तंत्र की यही दोमुँही नीति है। प्रियंकर इसे पहचानते हैं। उस पर प्रहार भी करते हैं। दुनिया की बुरी स्थिति को बताना पर्याप्त नहीं। उसे बदला कैसे जाये यह जानना महत्वपूर्ण है। जो दर्शन यह बताये वही कवि को वैज्ञानिक तीसरी आँख प्रदान कर सकता है- के जिनके कटोरदन में बद हैं-हमारी उपजाऊ धरती/जो हवा की बीमारी के कारक है।... हाज़िर है एक बेहतरीन योजना के साथ/ नदी के पाट को/चिकनी-चौड़ी सड़क में /कैसे बदला जाए।

बुनियादी परिवर्तन की प्रक्रिया के साथ यहाँ कविता में विकल्प का सार्थक संकेत है। विकल्पहीन कविता सूखी नदी की तरह उजाड़ होती है। यही नहीं कवि अपनी पारिस्थितिकी के

प्रति भी चिंतित है। इसी कविता में आगे हिंद और प्रशांत महासागर के 'कचरे से पटने' की बात कही गई है। यद्यपि सुविधाभोगी जन पृथ्वी और नदी को 'माँ' कहने का दम भरते हैं पर सबसे अधिक वे ही इन दोनों को त्रस्त भी करते हैं।

प्रियंकर की कविता रूप और कला के अच्छे प्रमाण प्रस्तुत कर परोक्षत: रूप-कलावाद के प्रतिरोध में खड़ी होती सही अर्थों में समकालीन तथा लोकधर्मी कविता है। वह एक व्यवस्थित तथा अनुशासित स्वभाव के कवि हैं। ऐसा कवि न तो अराजकता को मुँह लगाता है। न अतिवाद उसको कहीं विचलित करता है। मैं इन बातों को कवि के लिए आवश्यक मानता हूँ। कविता को ऊँचाइयों तक ले जाने के लिए यह एक कठिन पथ अख्तियार करने की बड़ी चुनौती को स्वीकारने जैसा है। कवि का ध्यान सदा ऐतिहासिक द्वंद्वमयता पर रहता है। इसलिए उनकी कविता अग्रगामी है। वह अपने समय की ऐतिहासिक गतिकी (dynamics) की सूक्ष्म प्रक्रिया को अग्रसर करने में सहायक है। कवि ने पूँजी केंद्रित समाज की विडम्बनाओं को सुझाते हुए उन विकृतियों की ओर भी बड़े तीखे तेवर दिखाए हैं जो हमें पशुता की ओर ढकेलती है। 'प्रतीत्य समुत्पाद' कविता में हमारे सांस्कृतिक संकट को बताते हुए कवि कहता है- पूंजी चाहिए, संस्कृति नहीं/भूमंडलीकृत दरबार चाहिए, संस्कृति नहीं।

संस्कृति मानवीय आत्मा का वास्तुशिल्पीय संगठित स्थापत्य है। आज वही सबसे अधिक संकट में है। हमारी प्राथमिकता में मनुष्य की 'आत्मा की रक्षा' नहीं बल्कि धन की कुत्सित आकांक्षा रह गई है। यहाँ भी कवि एक सार्थक विकल्प की ओर संकेत करता है- अकाश को मापने का हौसला चाहिए/इस महामंडी में मिल सके तो /चाहिए पृथ्वी पर मनुष्य की तरह/इस महामंडी में मिल सके तो/ चाहिए पृथ्वी पर मनुष्य की तरह /रहने की थोड़ी बहुत तमीज़/ हमें संस्कृति ही सिखाती है। अपार धन की कुत्सित लालसायें नहीं।